पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कृत। १६ गाथा पूरी हुई, १७वीं **उपदेश देने का क्रम** आचार्यों को उपदेश देने का क्रम कैसा होता है - ऐसा कहते हैं।

www.vitragvani.com

बहुशः समस्तविरतिं प्रदर्शितां यो न जातु गृह्णाति।
तस्यैक देशविरतिः कथनीयानेन बीजेन।।१७।।

आचार्यों की मुख्य बात है, हों! आचार्यों को जगत् को उपदेश कैसा करना, (उसकी बात है)। यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन मोक्षमार्ग का एक स्वरूप कहा, उसमें उसे पहले मुनिपने का-तीन की एकता का उपदेश देना चाहिए, यह बात शुरु करते हैं। फिर शुरु करेंगे, वह भी न पालन कर सके तो उसे श्रावकधर्म का उपदेश (देना) और उसमें भी उसे सम्यग्दर्शन का पहले करना। यह कहेंगे, पहले आगे कहेंगे २१ में। **'तत्रादौ सम्यक्त्वं'** २१ गाथा में कहेंगे।

यहाँ तो आचार्यों को पहला उपदेश सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित मुनिपने का मुख्य उपदेश होना चाहिए क्योंकि मोक्ष का कारण मुख्य वह है। **जो जीव 'बहुशः' बारबार बताने पर भी सकलपापरहित मुनिवृत्ति को....** सकल पापरहित अन्तर मुनि परिणति को **कदाचित् ग्रहण न करे तो उसको एकदेश पापक्रियारहित गृहस्थाचार इस हेतु से....** उसे गृहस्थाश्रम का आचार बतावे। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, हों!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो निवृत्ति की बात है। यह तो निवृत्ति, चारित्र की अपेक्षा है परन्तु उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित यह तो बात पहले लेना। समझ में आया? एकदेश पापक्रियारहित अर्थात् जो चारित्र में सर्वविरति का भाव है, ऐसा इसे न हो तो एकदेश (ग्रहण करे) **अनेन बीजेन** इस बीज द्वारा अर्थात् इस हेतु से, इस कारण से **कथन करना अर्थात् समझाना चाहिये।** उसे श्रावक का धर्म कहे, उसकी शक्ति न हो तो मुनिधर्म पालन न कर सके तो ऐसा कहे।

टीका : जो जीव अनेक बार उपदेश देने पर भी सकल पापरहित महाव्रत की क्रिया को कदाचित् ग्रहण न करे तो उस जीव को एकदेश पापरहित श्रावकक्रिया इस तरह बतावे। सम्यग्दर्शन ज्ञान तो पहले होवे ही, इसके बिना तो यह बात नहीं है। समझ में आया? परन्तु इसे इसका उत्साहित एकदम हो और महाव्रत

www.vitragvani.com

अंगीकार करे तो उसे मोक्ष का मूल हेतु हाथ आने से उसे मोक्ष नजदीक होता है। इसलिए पहला उपदेश वह दे। वह उसे न समझे तो उसे श्रावक का उपदेश दे।

भावार्थ : जो जीव उपदेश श्रवण करने में रुचिवान हो.... उपदेश सुनने की रुचिवाला हो। **उसे प्रथम ही बारबार मुनिधर्म का उपदेश देना चाहिये।** आचार्यों को। मुनि भी इस सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र के ऐसा कहते हैं। तीन रत्न इकट्ठे हों उसका देना ऐसा। **यदि वह जीव मुनिपद अंगीकार न करे तो बाद में उसे श्रावकधर्म का उपदेश देना योग्य है।** इतना सहन नहीं कर सके, इतनी ताकत न हो तो उसे श्रावक का (उपदेश देना)। उसका आश्रय लेकर फिर कितने ही सम्यग्दर्शन क्या इसका पता नहीं होता और एकदम मुनिक्रिया का कह दें, उनकी यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र में एकदम उपदेश देने से उत्साहित हो, चारित्र अंगीकार करे और ऐसा उपदेश देने पर न ग्रहण कर सके तो श्रावक का कहे, ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन तो पहला, यह आगे कहेंगे। १८, जरा शब्दार्थ की शैली साधारण हो गयी।

गाथा - १८

श्रावकधर्म के उपदेश की रीति आगे बताते हैं, उसी रीति से उपदेश देना चाहिये। जो इस अनुक्रम को छोड़कर उपदेश देता है, उस उपदेशदाता की निन्दा करते हैं:-

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्।।१८।।

मुनिव्रत का उपदेश न दे अरु श्रावकव्रत का करे कथन।
कोई अल्पमति तो जिन प्रवचन में उसको दण्ड विधान।।१८।।

अन्वयार्थ : (यः) जो (अल्पमतिः) तुच्छबुद्धि उपदेशक (यतिधर्मं) मुनिधर्म का (अकथयन्) कथन न करके (गृहस्थधर्मं) श्रावकधर्म का (उपदिशति) उपदेश देता है, (तस्य) उस उपदेशक को (भगवत्प्रवचने) भगवान के सिद्धान्त में (निग्रहस्थानं) दण्ड देने का स्थान (प्रदर्शितं) बताया है।

टीका : 'यः अल्पमतिः यतिधर्मं अकथयन् गृहस्थधर्मं उपदिशति तस्य भगवत्प्रवचने निग्रहस्थानं प्रदर्शितं।' - जो तुच्छबुद्धिवाला उपदेशक मुनिधर्म का उपदेश न देकर, गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है, उसे भगवान के सिद्धान्त में दण्ड का स्थान बताया है।

भावार्थ : जो उपदेशक पहले यतीश्वर के धर्म का तो उपदेश न सुनावे अपितु प्रथम ही श्रावकधर्म का व्याख्यान करे तो उस उपदेशक को जिनमत में प्रायश्चितरूप दण्ड का पात्र कहा गया है।।१८।।

गाथा १८ पर प्रवचन

श्रावकधर्म का व्याख्यान आगे जिस रीति से करते हैं, उस रीति से उपदेश

www.vitragvani.com

न लगे.... मूल तो मुनिपने का उपदेश उसे नहीं लगता। **तो यह अनुक्रम छोड़कर जो उपदेशदाता उपदेश देते हैं, उसकी निन्दा करते हैं।** मुनिपने का उपदेश पहले चाहिए, वास्तव में तो यह है। मुनिपने का उपदेश का अनुक्रम छोड़कर अकेला श्रावक का उपदेश दे तो वह निन्दा का पात्र है—ऐसा मूल कहते हैं। शब्द की शैली जरा ऐसी है, इसमें है, टोडरमलजी में ऐसे शब्द हैं।

यो यतिधर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थधर्ममल्पमतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्।।१८।।

जो तुच्छबुद्धि उपदेशक.... उपदेशक की बात है। **मुनिधर्म का कथन न करके....** प्रथम चारित्रसहित का कथन न करके **श्रावकधर्म का उपदेश देता है, उस उपदेशक को भगवान के सिद्धान्त में दण्ड देने का स्थान बताया है।** उत्कृष्ट उपदेश की शैली है। सम्यग्दर्शनसहित, ज्ञानसहित चारित्र अंगीकार करे तो एकदम मुक्ति को समीपरूप से पाता है। इसलिए मूल उपदेश तो यह। ऐसा मूल उपदेश न देकर पहले ही सीधा दूसरा दे तो वह दण्ड का-प्रायश्चित्त का स्थान है।

टीका : जो तुच्छबुद्धिवाला उपदेशक मुनिधर्म का उपदेश न देकर, गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है,.... सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित **उसे भगवान के सिद्धान्त में दण्ड का स्थान बताया है।** चारित्र की, पूर्ण चारित्र की अपेक्षा से अपूर्ण चारित्र की बात पहले करे और पूर्ण न करे तो दण्ड का पात्र है, ऐसा कहना है।

भावार्थ : जो उपदेशक पहले यतीश्वर के धर्म का तो उपदेश न सुनावे अपितु प्रथम ही श्रावकधर्म का व्याख्यान करे तो उस उपदेशक को जिनमत में प्रायश्चितरूप दण्ड का पात्र कहा गया है। इसे फिर कोई एकान्त में ले जाये (कहे), अपने तो सीधे मुनिपने की बात करनी, सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, उसकी यहाँ बात नहीं है। तीन एकता की पूर्णता एकसाथ हो उसकी बात करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित का चारित्रपना वही मुख्य मोक्ष का मार्ग है। उसका ही उपदेश आचार्यों को पहले करना चाहिए। उसे न पालन कर सके तो श्रावकधर्म का उपदेश करना परन्तु पहले से ही यदि मुनिधर्म का उपदेश न देकर श्रावक का दे तो उसे प्रायश्चित्त का स्थान गिना है।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे बने वैसे मुनि हो। बढ़ाने की बात कहाँ है ?

सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित। दो तो इकट्ठे सहित, उत्कृष्ट चारित्र की दशा का ही उपदेश आचार्यों को पहले करना चाहिए, आचार्यों की बात है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना मुनिपना आया कहाँ से ? यहाँ तो तीन की एकता, वह मोक्ष का मार्ग है; इसलिए तीन की एकता का पहले उपदेश देना—ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, अल्पमति कहा है न। उसकी मति अल्प है, पहले चारित्र का उपदेश देना चाहिए। ऐसा कहते हैं। ऐसा न देकर सीधे श्रावक का दे तो उपदेशक अल्पमति होना चाहिए। ऐसा कहते हैं। है न, पाठ में है न, अल्पमति।

जो उपदेशक पहले यतीश्वर के धर्म का तो उपदेश न सुनावे.... पहले श्रावक के धर्म का व्याख्यान करे। चारित्र के उत्कृष्ट और जघन्य दो भेद। उनमें यह बात चारित्र की अपेक्षा से (की है)। दर्शन-ज्ञान तो होते ही हैं; उनके बिना तो यह बात नहीं। उसमें पहले दर्शन का ही उपदेश दे। यह तो फिर आयेगा।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; चारित्र की अपेक्षा के भेद हैं। वैसे तो दर्शन अपेक्षा से पहला सम्यग्दर्शन का ही उपदेश दे। आ आदौ-ऐसा कहेंगे, देखो! है न ? २१ **तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।** २१ गाथा। पहला तो सम्यग्दर्शन का ही प्रयत्न करना और पहला वही उसे उपदेश देना परन्तु यह तो तीन-चारित्र की अपेक्षा से, तीन की एकता की अपेक्षा से उत्कृष्ट चारित्र छोड़कर जघन्य श्रावक की मध्यम दशा बतावे तो उसका उत्साह विशेष होवे, उसे चारित्र अंगीकार करने से ठगा जाये। इस अपेक्षा से बात की है। १९।

गाथा - १९

आगे उसको दण्ड देने का कारण कहते हैं:-

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्सहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि सम्प्रतृप्तः प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना।।१९।।

उस दुर्मति के अक्रम कथन से मुनिव्रत में उत्साहित शिष्य।
अरे! ठगाया गया तुच्छ पद में ही वह होकर सन्तुष्ट।।१९।।

अन्वयार्थ : (यतः) जिस कारण से (तेन) उस (दुर्मतिना) दुर्बुद्धि के (अक्रमकथनेन) क्रमभंग कथनरूप उपदेश करने से (अतिदूरं) अत्यन्त दूर अर्थात् अत्यधिक (प्रोत्सहमानोऽपि) उत्साहवान होने पर भी (शिष्यः) शिष्य (अपदे अपि) तुच्छ स्थान में ही (संप्रतृप्तः) सन्तुष्ट होकर (प्रतारितः भवति) ठगाया जाता है।

टीका : 'यतः तेन दुर्मतिना अक्रमकथनेन शिष्यः प्रतारितो भवति।' - जिस कारण से उस मन्दबुद्धिवाले उपदेशक द्वारा अनुक्रम को छोड़कर कथन करने से सुननेवाला शिष्य ठगाया जाता है। पहले ही श्रावक धर्म का उपदेश सुनकर शिष्य क्यों ठगाया जाता है?-उसका कारण कहते हैं। कैसा है शिष्य? ''अतिदूरं प्रोत्सहमानो अपि अपदेऽपि सम्प्रतृप्तः।'' अत्यन्त दूर तक जाने के लिये उत्साहित हुआ था तो भी अपद जो तुच्छ स्थान उसमें ही संतुष्ट हुआ है। इस शिष्य के अन्तरंग में इतना अधिक उत्साह उत्पन्न हुआ था कि यदि प्रथम ही मुनिधर्म सुना होता तो मुनिपदवी ही अंगीकार करता। परन्तु उपदेशदाता ने उसको प्रथम ही श्रावकधर्म का उपदेश दिया; अतः उसने उसे ही अंगीकार कर लिया। फलतः मुनिधर्म से वंचित ही रह गया। इस वास्ते उस उपदेशदाता को इस विधान के लिये दण्ड देना योग्य है।।१९।।

गाथा १९ पर प्रवचन

आगे उसको दण्ड देने का कारण कहते हैं:-

www.vitragvani.com

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्सहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि सम्प्रतृप्तः प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना।।१९।।

जिस कारण से उस दुर्बुद्धि के क्रमभंग कथनरूप उपदेश करने से अत्यन्त दूर अर्थात् अत्यधिक उत्साहवान.... एकदम वैराग्य हो गया हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित (होवे), एकदम वैराग्य हो गया हो, उदास... उदास... ऐसे शिष्य को ऐसा **उत्साहवान होने पर भी शिष्य तुच्छ स्थान में ही.... अपद** अर्थात् गृहस्थाश्रम के पद में **सन्तुष्ट होकर ठगाया जाता है।** मुनिपने से वह ठगाया जाता है।

जिस कारण से उस मन्दबुद्धिवाले उपदेशक द्वारा अनुक्रम को छोड़कर कथन करने से सुननेवाला शिष्य ठगाया जाता है। यहाँ तो चारित्र की पहली उग्रता दर्शन-ज्ञान के साथ की कहने के लिये, मोक्षमार्ग की पूर्णता बताने के लिये यह कथन है। समझ में आया? जहाँ सम्यग्दर्शन ही नहीं-ज्ञान नहीं और सीधे मुनिपना ले, वह मुनिपना है नहीं, वह मुनिपना व्यवहार से भी नहीं है, यह तो बाद में कहेंगे। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र नाम भी प्राप्त नहीं होता। **पहले ही श्रावक धर्म का उपदेश सुनकर शिष्य क्यों ठगाया जाता है....** उत्कृष्ट वैराग्य था उसे एकदम वैराग्य की धुन थी।

उसका कारण कहते हैं। कैसा है शिष्य? अत्यन्त दूर तक जाने के लिये उत्साहित हुआ था... एकदम पुरुषार्थ करके मानो कि मोक्ष लूँ। **तो भी अपद जो तुच्छ स्थान उसमें ही संतुष्ट हुआ है।** तथापि वह श्रावकधर्म सुनकर उतने में सन्तुष्ट हो गया है। **इस शिष्य के अन्तरंग में इतना अधिक उत्साह उत्पन्न हुआ था कि यदि प्रथम ही मुनिधर्म सुना होता तो मुनिपदवी ही अंगीकार करता।** यह सब व्यवहार की शैली की उपदेश पद्धति की बात है। **परन्तु उपदेशदाता ने उसको प्रथम ही श्रावकधर्म का उपदेश दिया; अतः उसने उसे ही अंगीकार कर लिया। फलतः मुनिधर्म से वंचित ही रह गया।** उसको। **इस वास्ते उस उपदेशदाता को इस विधान के लिये दण्ड देना योग्य है।** यह व्यवहार की विशेष चारित्र की प्रधानता बताने को यह बात की है। अब यहाँ मूल श्रावक की शुरुआत होती है। ऐसा मुनिपना नहीं ले सके उसे श्रावक के धर्म का उपदेश देना।

श्रावकधर्म–व्याख्यान

गाथा - २०

जो जीव, मुनिधर्म का भार उठाने में असमर्थ हैं, उनके लिये आचार्य आगे श्रावकधर्म का व्याख्यान करते हैं। वहाँ श्रावक को धर्मसाधन में क्या करना चाहिये– उसका व्याख्यान किया जा रहा है।

एवं सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मको नित्यम्।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्ति।।२०।।

सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरण इन तीन भेदमय मुक्ति–मार्ग।
सेवन करने योग्य सदा है यथाशक्ति श्रावक को जान।।२०।।

अन्वयार्थ : (एवं) इस प्रकार (तस्यापि) उस गृहस्थ को भी (यथाशक्ति) अपनी शक्ति अनुसार (सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मकः) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीन भेदरूप (मोक्षमार्गः) मुक्ति का मार्ग (नित्यं) सर्वदा (निषेव्यः) सेवन करना योग्य (भवति) है।

टीका : 'तस्य अपि यथाशक्ति एवं मोक्षमार्गः निषेवयः भवति।' – उस गृहस्थ को भी अपनी शक्ति अनुसार, जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है, ऐसे मोक्षमार्ग का सेवन करना योग्य है।

भावार्थ : मुनि के तो मोक्षमार्ग का सेवन सम्पूर्ण रूप से होता है और गृहस्थ को भी अपनी शक्ति–प्रमाण मोक्षमार्ग का थोड़ा–बहुत सेवन करना चाहिये। कारण कि धर्म का कोई दूसरा अंग नहीं है जिसका सेवन करने से अपना भला हो सके। कैसा है मोक्षमार्ग?

www.vitragvani.com

'सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मकः' – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का त्रिक जिसका स्वरूप है। भिन्न-भिन्न तीन मोक्षमार्ग नहीं हैं। तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है।।२०।।

गाथा २० पर प्रवचन

जो जीव मुनिधर्म का भार उठाने में असमर्थ हैं,.... देखो! मुनिधर्म का भार शब्द प्रयोग किया है। भार का अर्थ शुद्धचारित्र का पालन करने की शक्ति न हो। ऐसा शुद्धचारित्र निरतिचार वीतरागभाव। ऐसे चारित्र को पालन करने में समर्थ न हो। **उनके लिये आचार्य आगे श्रावकधर्म का व्याख्यान करते हैं।** मूल तो इसमें श्रावकधर्म की व्याख्या है। **वहाँ श्रावक को धर्मसाधन में क्या करना चाहिये-उसका व्याख्यान किया जा रहा है।** श्रावक को धर्मसाधन में क्या कहना, उसकी पहले व्याख्या है।

एवं सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मको नित्यम्।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्ति।।२०।।

देखो! श्रावक को भी तीनों साथ लिये, तीन रत्नत्रय साथ (लिये)। **एवं इस प्रकार उस गृहस्थ को भी.... तस्यापि उस गृहस्थ को भी अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीन भेदरूप मुक्ति का मार्ग सर्वदा सेवन करना योग्य है।** देखो! पाँचवें गुणस्थान में भी तीन रत्न लिये, भाई! यह नियमसार में भी भक्ति के अधिकार में आता है, भक्ति अधिकार। तीन निश्चय रत्नत्रय को मुनि और श्रावक दोनों सेवन करते हैं। निश्चयरत्नत्रय पाँचवें में नहीं है—ऐसा कहते हैं, वह मिथ्या बात है। चौथे में भी आंशिक है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, श्रावक को-पंचम गुणस्थानयोग्य जीव को, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीन भेदरूप मुक्ति का मार्ग-इन तीन का एकरूप ऐसा मुक्ति का मार्ग **सर्वदा सेवन करना योग्य है।** श्रावक को आत्मा के अनुभवसहित, ज्ञानसहित, श्रावक के व्रत का अथवा स्थिरता की आंशिकदशा और व्रतादि, यह मार्ग सर्वदा सेवन करनेयोग्य होता है, लो! **'तस्य अपि यथाशक्ति एवं मोक्षमार्गः निषेवयः भवति।' उस गृहस्थ को**

www.vitragvani.com

भी अपनी शक्ति अनुसार,.... देखा ? मुनि को पूर्ण है, इसे भी उसका अंश यथाशक्ति प्रमाण **जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है, ऐसे मोक्षमार्ग का सेवन करना योग्य है।**

मुनि के तो मोक्षमार्ग का सेवन सम्पूर्ण रूप से होता है.... महामुनि सम्यग्दर्शन –सम्यग्ज्ञानसहित, वीतरागता की तीन कषाय के अभाव की परिणतिसहित मुनिमार्ग का सेवन सम्पूर्णरूप से उन्हें होता है। मोक्षमार्ग का सेवन, **गृहस्थ को भी अपनी शक्ति–प्रमाण....** देखो! इसमें से, हों! तीन में से। **मोक्षमार्ग का थोड़ा–बहुत सेवन करना....** दर्शन–ज्ञानसहित थोड़ा–बहुत अर्थात् चारित्र की थोड़ी दशा भी इसे ग्रहण करना। थोड़ा–बहुत अर्थात् क्या ? एक प्रकार का नहीं; श्रावक को बहुत प्रकार हैं न ? स्थिरता के, पंचम गुणस्थान है न! **कारण कि धर्म का कोई दूसरा अंग नहीं है....** मोक्षमार्ग दर्शन–ज्ञान और शान्ति / चारित्र इसके अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से नहीं है ऐसा कहते हैं। आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप की अन्तर्दृष्टि, उसका ज्ञान और अन्तर की स्थिरता–ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म का अंग नहीं है—ऐसा कहते हैं। देखो, समझ में आया ?

दूसरा अंग नहीं है जिसका सेवन करने से अपना भला हो सके। आत्मा पूर्णानन्द शुद्धस्वरूप है, उसकी निश्चय दृष्टि, उसका निश्चय ज्ञान, और उसमें स्वरूप की सेवनदशा, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है; दूसरा कोई मोक्ष के मार्ग का अंग नहीं है—ऐसा कहते हैं। **जिसका सेवन करने से अपना भला हो सके।** भला तो आत्मा की शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, और चारित्र के सेवन से भला होता है। मूल तो ऐसा कहते हैं।

कैसा है मोक्षमार्ग ? 'सम्यग्दर्शनबोधचरित्रत्रयात्मकः'–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का त्रिक जिसका स्वरूप है। (त्रयात्मक) भिन्न–भिन्न तीन मोक्षमार्ग नहीं हैं। सम्यग्दर्शन एक अलग मार्ग, सम्यग्ज्ञान अलग मार्ग, सम्यक्चारित्र अलग मार्ग – ऐसा नहीं है। तीनों होकर एक त्रिक मोक्षमार्ग है। **तीनों मिलकर मोक्षमार्ग है।** अब देखो! तीन में शुरुआत में यह मूल चीज यहाँ से अब आती है। मोक्षमार्ग में मुनिपने की तीन की एकता को अलौकिक बात है; न पालन कर सके तो श्रावक का, उसे भी सम्यक् पहला यह। सम्यग्दर्शन के बिना उसे ज्ञान भी सच्चा नहीं होता और उसे चारित्र भी सच्चा नहीं होता। इसलिए प्रथम में प्रथम गृहस्थाश्रम में गृहस्थी जीव को भी सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्न / पुरुषार्थ (करना चाहिए)। देखो!

गाथा - २१

इन तीनों में प्रथम किसको अंगीकार करना चाहिये, वह कहते हैं:-

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च।।२१।।

इनमें सबसे पहले सम्यग्दर्शन पूर्णयत्न से ग्राह्य।
क्योंकि उसके होने पर ही ज्ञान चरित होते सम्यक्।।२१।।

अन्वयार्थ : (तत्रादौ) इन तीनों में प्रथम (अखिलयत्नेन) समस्त प्रकार सावधानतापूर्वक यत्न से (सम्यक्त्वं) सम्यग्दर्शन को (समुपाश्रयणीयम्) भले प्रकार अंगीकार करना चाहिये (यत:) क्योंकि (तस्मिन् सति एव) उसके होने पर ही (ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान (च) और (चारित्रं) सम्यक्चारित्र (भवति) होता है।

टीका : 'तत्र आदौ अखिलयत्नेन सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयम्।' इन तीनों में प्रथम ही समस्त उपायों से, जिस प्रकार भी बन सके वैसे, सम्यग्दर्शन अंगीकार करना चाहिये। इसके प्राप्त होने पर अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त होता है; और इसके बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता। यह स्वरूप की प्राप्ति का अद्वितीय कारण है। अत: इसके अंगीकार करने में किंचित्मात्र भी प्रमाद नहीं करना। मृत्यु का वरण करके भी इसे प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना। बहुत कहाँ तक कहें? इस जीव के भला होने का उपाय सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई नहीं। इसलिये उसे अवश्य अंगीकार करना। इसे ही प्रथम अंगीकार करने का क्या कारण है -वह बताते हैं। 'यत: तस्मिन् सति एव ज्ञानं च चरित्रं च भवति।' - उस सम्यग्दर्शन के होने पर ही सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र होता है।

भावार्थ : सम्यक्त्व बिना ग्यारह अंग तक पढ़ ले तो भी अज्ञानी ही कहा जाता है। फिर महाव्रतों का साधन करके अन्तिम ग्रैवेयक तक के बन्धयोग्य विशुद्ध परिणाम करे तो भी वह असंयमी ही कहलाता है। तथा सम्यक्त्वसहित जितना भी जानपना होवे

www.vitragvani.com

उस सभी का नाम सम्यग्ज्ञान है और जो थोड़ा भी त्यागरूप प्रवर्तन करे तो उसे सम्यक्चारित्र कहा जाता है। जिस प्रकार अंकसहित शून्य हो तो वह प्रमाण में आता है किन्तु अंक बिना शून्य तो शून्य ही है। उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चारित्र व्यर्थ ही हैं। अतः पहले सम्यक्त्व अंगीकार करके पश्चात् अन्य साधन करना चाहिये।।२१।।

गाथा २१ पर प्रवचन

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च।।२१।।

यहाँ वजन है। **इन तीनों में प्रथम समस्त प्रकार सावधानतापूर्वक यत्न से 'अखिलयत्नेन'....** देखो! पुरुषार्थ द्वारा प्रगट होता है–ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अखिल / महाप्रयत्न से प्रगट होता है; वह कहीं प्रयत्न बिना अपने आप आ जाय, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन **प्रथम समस्त प्रकार से....** इन तीनों में पहले सम्यग्दर्शन **समस्त प्रकार सावधानतापूर्वक यत्न से....** बहुत प्रकार से स्वरूप की ओर के सावधानी के पुरुषार्थ से। सन्मुखता का पुरुषार्थ लेना। समझ में आया? '**अखिलयत्नेन**' आचार्य ने ऐसा शब्द प्रयोग किया है। पूर्ण '**अखिल**' पूरा प्रयत्न, पूरा प्रयत्न। कलश–टीका में आता है न? सहज साध्य है। किस अपेक्षा से? यहाँ तीनों में प्रथम समस्त प्रकार से सावधानीपूर्वक। यहाँ पुरुषार्थ अपनी ओर करने में काललब्धि आदि पक जाती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र लेकर फिर सम्यग्दर्शन।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले चारित्र होता नहीं। चारित्र था कब परन्तु?

मुमुक्षु : परन्तु यह चारित्र लेकर करे तो क्या बाधा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होता नहीं। उसमें ले कहाँ से? 'सब साधन बन्धन हुए' वहाँ ऐसा होता है। यह मुनिपना तो यह नग्न–दिगम्बर की बात है, हों! वापस तुम्हारे माने हुए की बात नहीं। आहाहा! नग्न–दिगम्बर बाह्य से और

www.vitragvani.com

अभ्यन्तर में चारित्र की परिणति (होवे) ऐसे को मुनिपना मुख्य कहते हैं। ऐसी दशा हो सके नहीं तो उसे पहले श्रावकपना अंगीकार करना। श्रावकपने में भी **'अखिलयत्नेन'** प्रयत्न करके भगवान आत्मा की सन्मुखता के प्रयत्न से पुरुषार्थ करना। समझ में आया?

तीनों में भी प्रथम दर्शन, ज्ञान, चारित्र में भी पहले में पहला समस्त **'अखिल'** अर्थात् पूरे प्रकार से सावधानरूप यत्न से सम्यग्दर्शन भले प्रकार **'समुपाश्रयणीयम्' भले प्रकार अंगीकार करना चाहिये....** स्वभावसन्मुख की दृष्टि को पहले यथार्थरूप से अंगीकार करना चाहिए। समझ में आया? पहले इस सम्यग्दर्शन बिना... यह कहेंगे, देखो! **क्योंकि 'तस्मिन् सति एव'....** सम्यग्दर्शन होते ही **'तस्मिन् सति एव' सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है।** सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञान को सम्यक्पना होता है, तब उसे सच्चा चारित्र होता है। उसके बिना ज्ञान और चारित्र सच्चा नहीं होता। कहो समझ में आया?

'पालीताणा' बना था, नहीं? गुरु उपदेश देते थे, हमारी शक्ति कम हो तो यह करो। वहाँ तो वस्त्र निकाल दिया और साधु हो गया। दूसरों को कहे तुम्हारी शक्तिप्रमाण पहले क्षुल्लकपना अंगीकार करो, ऐसा करो। वहाँ तो एकदम वस्त्र छोड़ दिये और नग्न हो गया मुझे तो एकदम... क्योंकि यह पाठ शास्त्र में ऐसा है। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता। आहाहा! कौन करे उस क्रिया को? कर नहीं सकता।

यहाँ तो कहते हैं कि अन्तर में अनुभवदृष्टि हुई है, प्रतीति में निर्विकल्प आनन्द का भान हुआ है, ज्ञान हुआ है, पश्चात् उसे चारित्र अंगीकार करना चाहिए। पहले तो उत्कृष्ट चारित्र की ही प्रयत्नदशा से मोक्ष होता है। ऐसा न हो तो उसे श्रावकपना (अंगीकार करना); उसमें भी पहले सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिए। कहो, समझ में आया? इसके कितने शब्द प्रयोग किये! देखो, **आदौ** प्रयोग किया है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र में प्रथम सम्यग्दर्शन **आदौ** उसमें भी **'अखिलयत्नेन'** प्रयोग किया है, पूर्ण पुरुषार्थ से। उसमें भी **'समुपाश्रयणीयम्'** भलीभाँति सेवन करना, उपासनीय अर्थात् अंगीकार करना, आश्रय करना। भगवान आत्मा शुद्ध असंख्य प्रदेशी आनन्दकन्द है, उसका भलीभाँति आश्रय लेकर प्रयत्न भलीभाँति करना, कहो समझ में आया?

भलीभाँति अंगीकार करना चाहिए। क्योंकि सम्यग्दर्शन होते ही **सम्यग्ज्ञान और**

www.vitragvani.com

सम्यक्चारित्र होता है। इसके बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होते। मिथ्याज्ञान और मिथ्याव्रत आदि होते हैं, वे कहीं आत्मा के कल्याण का कारण नहीं है। कहो, क्या करना पहले? निवृत्ति लेकर बैठे तो पहले ठीक पड़े न! इतनी निवृत्ति हो तो...। अनन्त बार ऐसी ली है। नौवें ग्रैवेयक गया, तब अनन्त बार ऐसा नग्नपना लिया है, बाह्य नग्न-मुनि, हों! उसे द्रव्यलिंग कहते हैं। वस्त्रवाले को द्रव्यलिंग भी नहीं है।

'तत्र आदौ अखिलयत्नेन सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयम्।' इन तीनों में प्रथम ही समस्त उपायों से,.... जितने उपाय लागू पड़ें, उतने उपाय द्वारा पहले में पहला, **जिस प्रकार भी बन सके वैसे, सम्यग्दर्शन अंगीकार करना चाहिये।** यदि बने तो इसका अर्थ—यदि बने तो यही पहले करना, ऐसा। करने का तो यही है। बने तो-वापस फिर ढीला-ऐसा नहीं लेना वहाँ। यह बने तब तो सम्यग्दर्शन अंगीकार करना पहले। इसमें ही बने ऐसा है। अर्थात्? बने तो अर्थात्? इसका अर्थ क्या है?

नहीं, इसमें एक अर्थ है। विशेष कदाचित् जानपना न हो तो यह तो करना। जो बने तो-ऐसा है। जानपने के बोल विशेष कदाचित् न हो तो बने तो यह तो करना। जानपने में बहुत रुके रहना और यह न करना-ऐसा नहीं। ऐसे 'बने तो' का सच्चा अर्थ यह है। ऐसा कि खास बने तो यह ही करना। जानपने में रुकने की अपेक्षा, विशेष जानपने में रुकने की अपेक्षा यह पहले करना-ऐसा कहते हैं। वह कम हो तो आपत्ति नहीं, परन्तु यह इसे पहले करना। समझ में आया? यह आगे कहेंगे। सामान्य और विशेष समकित की व्याख्या, कहेंगे। इस जानपने की विशेषता के समक्ष मूल यह करना-ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान बने तो भले करे पहले, जानपना विशेष उतना मात्र, परन्तु फिर भी यह करना, वह मुख्य है। यह रह न जाए। जानपने के बोल में यह और यह करते-करते (यह रह न जाए), क्योंकि देखो! पहले कहेंगे सामान्य समकित.... परभावों से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को अपनेरूप श्रद्धना, उसे सामान्य तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं। विशेष जानपनेवाले को विशेष कहेंगे। समझे न? यह २२ वीं गाथा में कहेंगे। समझ में आया? थोड़ा-बहुत जानपना हो तो भी उसे उस अन्तर्मुख का प्रयत्न करना-ऐसा कहते हैं। स्वभावसन्मुख की प्रयत्नदशा को अंगीकार करना। उसमें ज्ञान भी उघड़ जाएगा। समझ में आया?

www.vitragvani.com

उपायों से, जिस प्रकार भी बन सके वैसे,.... इसका अर्थ कि प्रयत्न द्वारा सम्यग्दर्शन करना। **उपायों से, जिस प्रकार भी बन सके वैसे,....** उपाय अर्थात् पुरुषार्थ से बने तो इस प्रमाण करना। **इसके प्राप्त होने पर....** सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर **अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त होता है।** इस सम्यग्दर्शन से अवश्य इसे (जीव को) मोक्षपद प्राप्त होगा, जरूर इसे केवलज्ञान प्राप्त होगा। समझ में आया? दूसरा बहुत जानपना हो और भले कदाचित् कोई व्रत का अभ्यास करता हो, परन्तु उससे कोई मोक्ष नहीं होगा; इससे तो जरूर मोक्ष होगा—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह प्राप्त होने पर अवश्य-जरूर केवलज्ञान की-पूर्ण की प्राप्ति होगी। देखो! यहाँ सम्यग्दर्शन पर जोर दिया है, इसमें मोक्षपद की प्राप्ति ले ली, एक में। समझ में आया? **इसके बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता।** सम्यग्दर्शन के बिना सर्वथा मुक्ति, संवर, निर्जरा का अंश भी नहीं होता... तो पूर्ण मोक्ष तो होता नहीं। समझ में आया?

यह स्वरूप की प्राप्ति का अद्वितीय कारण है। सम्यग्दर्शन—आत्मा में विपरीत-अभिनिवेशरहित आत्मा का परिणाम—ऐसा जो सम्यग्दर्शन—वह स्वरूपप्राप्ति का अद्वितीय कारण है। आत्मा को जो शुद्धस्वरूप है, उसकी प्राप्ति का यही कारण है। पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति का भी कारण है और वर्तमान सम्यग्दर्शन में, यह आत्मा पूर्ण है, उसकी प्राप्ति इसमें होती है। समझ में आया? स्वरूपप्राप्ति अर्थात् आत्मा शुद्ध ज्ञायकमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड, इस सम्यग्दर्शन में उसकी प्राप्ति होती है। समझ में आया? मोक्षपद प्राप्त होता है, उसके बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता।

यह स्वरूप की प्राप्ति का.... लो! **अद्वितीय कारण है।** अजोड़ कारण है। स्वयं शुद्ध परमात्मा, सम्यग्दर्शन में ही प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त ज्ञान में भी वह प्राप्त नहीं होता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दृष्टि में पूर्ण चैतन्यस्वरूप की प्राप्ति होती है, पूरा परमात्मा प्राप्त होता है; इसलिए इस मोक्ष के मार्ग में पहले इसे प्रयत्न करके अंगीकार करना। **अतः इसके अंगीकार करने में....** इसलिए इसे अन्तर ग्रहण करने में **किंचित् मात्र भी प्रमाद नहीं करना।** आलस्य नहीं करना। समझ में आया? शुद्धस्वरूप की ओर सन्मुख होने के लिये प्रयत्न करना, उसका आलस्य नहीं करना। इस सम्यक् में

www.vitragvani.com

आत्मा का सिद्धस्वरूप कैसा है–इसकी—परमात्मा की—प्राप्ति उसमें होती है। वर्तमान, हों! और पश्चात् पूर्ण भी इससे होता है। वर्तमान भी इससे प्राप्त होता है और पूर्ण भी इससे होता है।

मरकर भी इसे प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना। मरकर अर्थात् दुनिया की दरकार छोड़कर; शरीर का होना हो, वह होओ, (सब) छोड़कर, बाहर की स्थिति में दुनिया गिनेगी या नहीं गिनेगी, अकेला पड़ जाऊँगा या नहीं पड़ूँगा—सब छोड़ देना। समझ में आया? दुनिया ऐसा भी कहे लो! ये! आत्मा शोधने निकले हैं। व्रत पालना नहीं, क्रिया करना नहीं—ऐसा दुनिया कहे तो उसके लिये मर जा, वह भले कहे, उस पर लक्ष्य मत रख। समझ में आया? वे तो सब मानो हम साधु हो गये हैं, इसलिए अब हो गया... फिर आत्मा खोजना तो क्या? आत्मा तो बाद में मिलता है। पहले तो साधुपना पाले, फिर आत्मा मिले न! तेरा साधुपना कब था? गृहीत मिथ्यादृष्टि है। गृहीत मिथ्यात्व, गृहीत मिथ्याज्ञान, विपरीत कल्पना। व्रत के परिणाम का तो ठिकाना कहाँ था? **अमस्ता** किन्तु शुभ का भी कहाँ ठिकाना है? कहो!

मरकर भी इसे प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना। आता है न? कुतूहल। कलश (२३, समयसार) में (आता है), मरकर अर्थात् दुनिया की दरकार छोड़ देना। छोड़, होगा सो होगा। आत्मा सन्मुख को अंगीकार करने का प्रयत्न (कर)। यही पहले (कर)। आत्मा का मोक्षमार्ग और वर्तमान पूर्ण प्राप्ति का यही कारण है। कहो, समझ में आया? **बहुत कहाँ तक कहें?** देखो! **इस जीव के भला होने का उपाय सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई नहीं।** समझ में आया? जानपना हो, न हो। समझ में आया? दुनिया को समझाना आवे, न आवे, इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक सम्यग्दर्शन की चीज़ ऐसी है। इसके अतिरिक्त जगत में भला कोई है नहीं। आहा!

इस जीव के भला होने का उपाय सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई नहीं। कहो, समझ में आया? चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकित हो, ज्ञान बहुत अल्प हो, लो! उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वस्तु–पूरी चीज़ है, वह अनुभव में पकड़ में आ गयी, बस! यही मोक्ष का (मार्ग है)। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है नहीं। इसके अलावा कोई भला–कोई

www.vitragvani.com

है ही नहीं। समझ में आया? जानपने में तो पाँच समिति, तीन गुप्ति, हेय-उपादेय का थोड़ा ज्ञान हो। समझे न? बारह अंग का हो, न हो—उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस जीव के भला होने का उपाय इसका मूल 'दंसण मूलो धम्मो' मूल जो चारित्र, उसका मूल सम्यग्दर्शन है। है न? धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। धर्म अर्थात् चारित्र, परन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है। कहो! उस व्यवहार समकित की बात होगी यह? **आदौ** में कहा न? भाई! **आदौ** प्रथम यह करो। तो व्यवहार समकित की बात होगी यह? ऐ...ई...! हरिभाई! व्यवहार समकित क्या? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा.....

मुमुक्षु : ये आत्मा के परिणाम हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मरूप है न! आत्मरूप ही है—ऐसा कहेंगे। २२ वीं (गाथा में) ये तो आत्मरूप है, ये आत्मरूप है। शुभभाव भी संवर-निर्जरा का भाग है, वह आत्मा का रूप है, ऐसा वे कहते हैं। ये तो सब तैयार रखे हैं। शुभयोग में संवर-निर्जरा है, आया नहीं? कल नहीं आया था संवर-निर्जरा? शुभभाव में संवर-निर्जरा है, ऐसा कहते हैं। क्या करना है? विपरीत स्थिति में धर्मपना मनवाना है। क्या करें? कहा नहीं था?

एक व्यक्ति ने पूछा, भाई! ऐसी उपादान-निमित्त की चर्चा, निश्चय-व्यवहार की चर्चा अपने बाप-दादा के पास नहीं थी और अपने बाप-दादा भगवान की पूजा-भक्ति करते तो उन्हें धर्म होता होगा या नहीं?—ऐसा प्रश्न पूछा, तो दूसरे ने उत्तर दिया-धर्म होता था। क्यों? वे भगवान है—ऐसा मानते थे या नहीं? ये भगवान, परमेश्वर हैं, अरिहन्त हैं, केवली हैं—वे ऐसा मानते हैं या मूर्ति है—ऐसा मानते हैं? ऐसा। वे भगवान है, ये भगवान अरिहन्त हैं, अरिहन्त अनन्त ज्ञानी हैं, ऐसा। वे ऐसा कहते हैं कि तुम पत्थर हो, तुम यह हो? ऐसा उसने कहा। ऐ...ई...! भगवान हैं, भगवान अनन्त ज्ञान सम्पन्न हैं, अनन्त दर्शन सम्पन्न हैं, वीतराग सम्पन्न हैं, देव पूर्ण ज्ञानी हैं—ऐसा वे देखते हैं, ऐसा उन्हें ज्ञान था, उन्हें श्रद्धा थी। ठीक! क्या करे? कोई पूछनेवाला नहीं मिलता, लूटनेवाला मिलता है। लोगों को—समाज को इतनी सब आगे बढ़ने की समझ नहीं मिलती। जहाँ पड़े, वहाँ यदि सन्तोष मनवा देता हो तो दिक्कत नहीं। उसमें तुम्हारे अधिक आगे बढ़ोगे... उसे चाहिए हो उतना। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के बिना एक अंश भी आगे चले-ऐसा नहीं है।

www.vitragvani.com

ये क्रियाकाण्ड करके, व्रत और नियम पालकर, ब्रह्मचर्य, यात्रा, भक्ति और पूजा करके (चले जाएं)। समझ में आया?

आत्मा पूर्ण वस्तु—जो स्वरूप पूर्ण है, उसकी अन्दर प्रतीति, भान आये बिना... इसे स्वरूप की पूर्ण प्राप्ति का उपाय तो यह है। समझ में आया?

इस जीव के भला होने का उपाय... देखो! उपाय तीन कहे थे। दर्शन-ज्ञान-चारित्र, तीन उपाय हैं, परन्तु यह उपाय **सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई नहीं।** समझ में आया? **इसलिये उसे अवश्य अंगीकार करना।** इसलिए उसे पहले शुरुआत में प्रगट करना। **इसे ही प्रथम अंगीकार करने का क्या कारण है....** वापस बात करते हैं, लो! पहले उसे अंगीकार करना, सम्यग्दर्शन यथार्थ (प्रगट करने का कारण क्या है?) अभी तो यहाँ देव-गुरु-शास्त्र का भी ठिकाना न हो, देव-गुरु-शास्त्र किसे कहना? समझ में आया? और इसे समकित हो गया है। देव-गुरु की श्रद्धा है—हमें देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, नवतत्त्व की श्रद्धा है। नव तत्त्व में आत्मा कैसा है—इसकी खबर बिना श्रद्धा कहाँ से आयी?

इसे ही प्रथम अंगीकार करने का क्या कारण है, वह बताते हैं। पाठ में **'यतः तस्मिन् सति एव ज्ञानं च चरित्रं च भवति।' उस सम्यग्दर्शन के होने पर....** आत्मा का अन्तर दर्शन-श्रद्धा होने पर, शुद्धस्वरूप का निर्विकल्प भान / श्रद्धा होने पर **सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र होता है।** फिर उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है, होता है। इसके बिना सम्यग्ज्ञान होता नहीं। जहाँ दृष्टि विपरीत है, अन्तर्मुख दृष्टि हुई नहीं, उसका ज्ञान अन्तर्मुख झुके ऐसा सच्चा हो सकता नहीं। समझ में आया? **'यतः तस्मिन् सति'** सम्यग्दर्शन होता, ऐसा। एक निश्चय से ज्ञान और चारित्र ही होता है। तो ही उसे सच्चा ज्ञान और चारित्र होता है, इसके बिना नहीं होता।

भावार्थ : सम्यक्त्व बिना ग्यारह अंग तक पढ़ ले तो भी अज्ञान ही कहा जाता है। आत्मश्रद्धा, अनुभव की प्रतीति बिना जो ग्यारह अंग पढ़े तो भी वह अज्ञान नाम पाता है। ग्यारह अंग किसे कहते हैं? आहाहा! जानपना करे। हिन्दी में क्या है? पढ़े। ग्यारह अंग पढ़े। पढ़ लिये ग्यारह अंग। ग्यारह में कितना होता है? एक आचारांग, उसमें अठारह हजार पद; एक पद में इक्यावन करोड़ (से) अधिक श्लोक, एक पद में!

www.vitragvani.com

इक्यावन करोड़ (से) अधिक श्लोक एक पद में। वैसे अठारह हजार पद, उनका एक आचारांग, उसका दुगुना सूयगडांग, दुगुना ठाणांग—ऐसे ग्यारह अंग का जानपना होवे तो वह अज्ञान है। कहो, समझ में आया?

सम्यक्त्व बिना ग्यारह अंग तक पढ़ ले... लो 'भणे' अर्थात् पढ़े। **तो भी अज्ञान ही कहा जाता है।** ग्यारह अंग का पढ़ा हुआ भी अज्ञानी है। सम्यग्दर्शन के बिना वह अज्ञान है, ज्ञान है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? कहेंगे, हों! अंक बिना का शून्य। **फिर महाव्रतों का साधन करके....** यह आया। महाव्रत कैसे? दिगम्बर मुनि जैसे, हों! अट्ठाईस मूलगुण, उनके महाव्रत, हों! तुम्हारे ये सब हैं, वे तो महाव्रत ही नहीं हैं, द्रव्यलिंग भी नहीं है। समझ में आया?

यह तो नग्न मुनि हो, दिगम्बर हो, अट्ठाईस मूलगुण, महाव्रत आदि पालता हो, तो भी सम्यग्दर्शन के बिना वे शून्य हैं। समझ में आया? 'महाव्रत आदि'; आदि अर्थात् अट्ठाईस मूलगुण, व्यवहार समिति, व्यवहार गुप्ति, अशुभ से हटे, शुभ में रहे, उस प्रकार से चुस्त ब्रह्मचर्य पालन करे। व्यवहार है, व्यवहार साधन है—ऐसा माने; उसे होगा-ऐसा माने; उसे दर्शन बिना ये सब **महाव्रतों का साधन करके अन्तिम ग्रैवेयक तक के बन्धयोग्य विशुद्ध परिणाम करे....** देखो! नौवें ग्रैवेयक जानेयोग्य के शुभभाव करे, **तो भी वह असंयमी ही कहलाता है।** असंयमी है। आहा...! अन्तिम में अन्तिम बात ली। महाव्रत आदि का साधन करे, अट्ठाईस (मूल)गुण पाले, हजारों रानियाँ छोड़कर महाव्रत ले, ऐसा करे, ऐसे अतिचाररहित चुस्त पालन करे, हों! अन्तिम ग्रैवेयक तक, नौवें ग्रैवेयक तक के बन्ध परिणाम को पाये—ऐसा कहते हैं। बन्ध के योग्य ऐसा जो शुभपरिणाम; विशुद्ध अर्थात् शुभभाव को करे, **तो भी वह असंयमी ही कहलाता है।** तो भी उसे असंयती नाम प्राप्त होता है। असंयती होता है-ऐसा कहते हैं। उसे ज़रा भी संयम होता नहीं। समझ में आया?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'—इसका अर्थ (करते हैं)। वह तो अभव्य के लिये है—ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। सबके अर्थ बदल डाले। वह तो अभव्य के लिये हैं—ऐसा कहते हैं; वरना तो भव्य को महाव्रत हो, वे मोक्ष का ही

www.vitragvani.com

कारण है। यहाँ तो कहते हैं कि महाव्रत आदि सब परिणाम, वे शुभपरिणाम हैं, पुण्यबन्ध का कारण है, नौवें ग्रैवेयक का बन्ध करते हैं। आत्मा के जन्म-मरण में अबन्ध परिणाम वे जरा भी है नहीं। कहो, समझ में आया? महाव्रत आदि का साधन करते हैं, हों! ऐसा है न?

अन्तिम ग्रैवेयक तक के बन्धयोग्य विशुद्ध परिणाम.... महाव्रत का साधन करे तो विशुद्ध परिणाम-बन्ध को पाता है-ऐसा कहते हैं। उस साधन में कोई स्वरूप साधन है नहीं। **तथा सम्यक्त्वसहित जितना भी....** देखो! सम्यक्त्व / आत्मश्रद्धा, अनुभव, भान **सहित जितना भी जानपना होवे....** जो कुछ थोड़ा भी जानपना हो, **उस सभी का नाम सम्यग्ज्ञान है....** समझ में आया? **सम्यक्त्वसहित जितना....** उसमें (मिथ्यात्वसहित में) ग्यारह अंग तक कहा था। यहाँ जो कुछ जानपना थोड़ा-बहुत हो, वह सब सम्यग्ज्ञान (नाम) पाता है। तथा उसको (मिथ्यात्वी को) महाव्रत आदि का पूर्ण साधन था और इसे **जो थोड़ा भी त्यागरूप प्रवर्तन करे....** थोड़ी भी रागरहित स्थिरता हो। समझ में आया? **थोड़ा भी त्यागरूप प्रवर्तन करे....** रागरहित थोड़ी भी स्थिरता हो तो वह सम्यक्चारित्र नाम पाता है। समझ में आया? यह पूरी बात, पूरा अभी बदलाव हो गया है। वह व्याख्या रह गयी। मुनिपना... मुनिपना... मुनिपना.... मुनिपना... जाओ, ले लो।

सम्यग्दर्शनसहित यदि थोड़ा भी त्याग... त्याग अर्थात् राग का अभाव... थोड़े अंश भी राग का अभाव। तो भी उस अन्तर सम्यग्दर्शनसहित आंशिक स्थिरता हुई, इससे उसे सम्यक्चारित्र कहने में आता है। महाव्रत आदि के इतने बड़े साधन करे तो भी सम्यग्दर्शन के बिना (बन्धयोग्य) विशुद्ध परिणाम को पाता है। आत्मदर्शन / सम्यग्दर्शनसहित थोड़ा भी राग का त्याग हो तो सम्यक्चारित्र नाम पाता है। देखो!

जिस प्रकार अंकसहित शून्य हो तो वह प्रमाण में आता है.... अंकसहित की शून्य हो तो गिनती में आवे। पहले एकड़ा (अंक) होवे, फिर शून्य, अंकसहित शून्य होवे, एकड़े सहित शून्य होवे तो प्रमाण में—गिनती में आवे। अंक के बिना शून्य, शून्य ही है। एकड़े के बिना शून्य, वह शून्य ही है। लाख शून्य लिखी हो तो (भी) अंक के बिना शून्य, शून्य है और एक अंक हो एकड़ा और यह शून्य होवे तो गिनती में आवे, प्रमाण में

www.vitragvani.com

गिनी जाए। देखो! एक को शून्य पड़े तो नौ बढ़ जाए। एक हो और फिर शून्य आवे तो नौ बढ़ जाएँ। लाख शून्य हो और एक न हो तो शून्य, शून्य ही रहे। आहाहा! समझ में आया?

उसी प्रकार सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चारित्र व्यर्थ ही हैं। नाम तो दिया, हों! ज्ञान और चारित्र नाम दिया। ऐसे समकित के बिना ग्यारह अंग का ज्ञान और महाव्रत आदि के साधन, वे सब व्यर्थ हैं। इसके आत्मा को चारित्र बिल्कुल है नहीं। देखो! **आदौ** शब्द पड़ा है न, इसमें यह सब वज़न है। प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है उसे जानना और उसे अंगीकार करना। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है?— इसका पता नहीं होता। यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, अमुक करना-हो गया और अपन यह व्यवहार साधन करते हैं, इसलिए धीरे-धीरे निश्चय चारित्र होगा—यह सब मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्यावर्तन है। समझ में आया?

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चारित्र व्यर्थ ही हैं। अतः.... यह पहला शब्द था, उसकी शुरुआत अब। **पहले सम्यक्त्व अंगीकार करके....** यहाँ तक '**आदौ**' की व्याख्या की है। है न **आदौ**? **तत्र**, वहाँ, तीन में वहाँ, ऐसा। **तत्र** अर्थात् तीन में वहाँ। तीन अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। तीन में वहाँ **आदौ** समकित, ऐसा।

'श्रीमद्' कहते हैं कि लोग अभी व्रत-तप पालते हैं। सम्यग्दर्शन तो नाममात्र है, ज्ञान नाममात्र और व्रत भी उसके नाममात्र कहने के; और माना है कि हमारे दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों हैं। समझ में आया? उसके व्रत भी कैसे, वे जानने जैसे होते हैं, ऐसा। सम्यग्दर्शन का तो पता भी नहीं, ज्ञान का तो कुछ पता नहीं, हो गये हम व्रतधारी और मुनि! कहते हैं कि समकित के बिना वह ज्ञान और वे सब व्रत, वह चारित्र अर्थात् वे व्रत, हों सच्चा चारित्र कहाँ है? (वह सब) व्यर्थ है।

अतः पहले सम्यक्त्व अंगीकार करके पश्चात् अन्य साधन करना चाहिये। इसके पश्चात् स्वरूप में स्थिर होने के साधन अथवा फिर विकल्प आदि व्यवहार आवे, वह पश्चात् होता है। इसके बिना, पहले यह न हो तो उसे हो सकता नहीं। देखो! यह २१ वीं गाथा से शुरु हुई है अलौकिक बात। लो! समझ में आया?

गाथा - २२

इस प्रकार जो सम्यक्त्व का लक्षण जाने तो उसे अंगीकार करे। इसलिए (प्रथम ही) उस सम्यक्त्व का लक्षण कहते हैं।

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूपं तत्।।२२।।

जीव-अजीव आदि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदा कर्तव्य।
विपरीताभिनिवेश रहित यह श्रद्धा ही है आत्मस्वरूप।।२२।।

अन्वयार्थ : (जीवाजीवादीनां) जीव-अजीवादि (तत्त्वार्थानां) तत्त्वार्थों का (विपरीताभिनिवेशविविक्तं) विपरीत अभिनिवेश (आग्रह) रहित अर्थात् अन्य को अन्यरूप समझने रूप जो मिथ्याज्ञान है, उससे रहित (श्रद्धानं) श्रद्धान अर्थात् दृढ़विश्वास (सदैव) निरन्तर ही (कर्त्तव्यं) करना चाहिये। कारण कि (तत्) वह श्रद्धान ही (आत्मरूपं) आत्मा का स्वरूप है।

टीका : 'जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां श्रद्धानं सदैव कर्त्तव्यं।' - जीव, अजीव आदि जो तत्त्वार्थ - तत्त्व अर्थात् जिसका जैसा कुछ निजभाव है वैसा ही होना वह, और उस तत्त्व से संयुक्त जो अर्थ अर्थात् पदार्थ वही तत्त्वार्थ - उसका श्रद्धान अर्थात् 'ऐसे ही है अन्य प्रकार से नहीं है, ऐसा प्रतीतभाव वही सदा कर्त्तव्य है।' कैसा श्रद्धान करना योग्य है? 'विपरीताभिनिवेशविविक्तं' अर्थात् अन्य को अन्यरूप माननेरूप मिथ्यात्व से रहित श्रद्धान करना। 'तत् आत्मरूपं अस्ति' - वही श्रद्धान आत्मा का स्वरूप है। जो श्रद्धान, क्षायिक सम्यग्दृष्टि के उत्पन्न होता है, वही सिद्ध अवस्था तक रहता है। इसलिए वह उपाधिभाव नहीं है, आत्मा का निजभाव है।

भावार्थ : तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन का लक्षण है। वह तत्त्वार्थश्रद्धान दो प्रकार का है। एक सामान्यरूप, एक विशेषरूप। जो परभावों से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को

www.vitragvani.com

आपरूप से श्रद्धान करे, उसे सामान्य तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं। यह श्रद्धान तो नारकी, तिर्यंचादि सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों के होता है। और जीव-अजीवादि सात तत्त्वों के विशेषण जानकर अर्थात् उनके भेदों को जानकर श्रद्धान करे, उसे विशेष तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं। यह श्रद्धान मनुष्य, देवादि विशेष बुद्धिवान जीवों के होता है। परन्तु राजमार्ग (मुख्यमार्ग) की अपेक्षा सातत्त्वों को जानना वही सम्यक्त्व का-सम्यक्श्रद्धान का कारण है। कारण कि यदि तत्त्वों को जाने नहीं तो श्रद्धान किसका करे? इसलिए सात तत्त्वों का वर्णन संक्षेप में करते हैं।

१. जीवतत्त्व : प्रथम ही जीवतत्त्व चेतना लक्षण से विराजमान (वह) शुद्ध, अशुद्ध और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। वहाँ (१) शुद्ध जीवतत्त्व-जिन जीवों के सर्व गुण-पर्याय अपने निजभावरूप परिणमन करते हैं अर्थात् जिनके केवलज्ञानादि गुण शुद्ध परिणति-पर्याय से विराजमान हुए हैं, उन्हें शुद्ध जीव कहते हैं।

(२) अशुद्ध जीवतत्त्व : जिन जीवों के सर्व गुण-पर्याय विकारभाव को प्राप्त हो रहे हैं, ज्ञानादि गुण आवरण से आच्छादित हो रहे हैं, उनमें से जो थोड़े-बहुत प्रगटरूप हैं, वह विपरीत परिणमन कर रहे हैं और जिनकी परिणति रागादिरूप परिणमन कर रही है, उन मिथ्यादृष्टि जीवों को अशुद्ध जीव कहते हैं।

(३) मिश्रजीव : जिन जीवों के सम्यक्त्वादि गुणों की कुछ शक्ति शुद्ध हो गई है अथवा उनमें भी कुछ मलिनता शेष रह गई है अर्थात् कोई ज्ञानादि गुणों की कुछ शक्ति शुद्ध हो गई है तथा शेष सब अशुद्ध रह गई है। कुछ गुण अशुद्ध ही हो रहे हैं, ऐसी तो गुणों की दशा हुई है और जिनकी परिणति शुद्धाशुद्धरूप परिणमन कर रही है, उन जीवों को शुद्धाशुद्धस्वरूप मिश्र कहते हैं। इस भाँति जीवतत्त्व तीन प्रकार का है।

२. अजीवतत्त्व : जो चेतनागुण से रहित हैं वह पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल (कालाणुरूप) पाँच प्रकार के हैं। उनमें (१) पुद्गलद्रव्य - स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण-संयुक्त अणु तथा स्कन्ध के भेद से दो प्रकार के हैं। उनमें जो एकाकी-अविभागी परमाणु है, उसे अणु कहते हैं। अनेक अणु मिलकर स्कन्धरूप होने पर स्कन्ध कहलाता है। अथवा पुद्गलद्रव्य के छह भेद हैं। (१) स्थूलस्थूल - काष्ठ पाषाणादि जो छेदे-भेदे जाने पर बाद में मिलें नहीं, उन्हें स्थूलस्थूल पुद्गल कहते हैं। (२) स्थूल - जो जल, दूध, तेल आदि द्रव पदार्थों की तरह छिन्न-भिन्न होने पर फिर तुरन्त ही मिल

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सकें, उन्हें स्थूल कहते हैं। (३) स्थूलसूक्ष्म – आपात, चांदनी, अन्धकारादि जो आँख से दिखाई पड़े किन्तु पकड़ने में न आवें, उन्हें स्थूलसूक्ष्म कहते हैं। (४) सूक्ष्मस्थूल – जो शब्द, गन्धादि आँख से दिखाई न पड़ें किन्तु अन्य इन्द्रियों से ज्ञान में आवें, उन्हें सूक्ष्मस्थूल कहते हैं। (५) सूक्ष्म – जो कार्मण स्कन्धादिक बहुत परमाणुओं के स्कन्ध हैं परन्तु इन्द्रियगम्य नहीं हैं, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। (६) सूक्ष्मसूक्ष्म – अति सूक्ष्म स्कन्ध अथवा परमाणु को सूक्ष्मसूक्ष्म कहते हैं। इस प्रकार इस लोक में प्रचुर प्रसार इस पुद्गलद्रव्य का ही है।

(२) धर्मद्रव्य : जीव और पुद्गलों को गति करने में सहकारी गुणसंयुक्त लोकप्रमाण एक द्रव्य है।

(३) अधर्मद्रव्य : जीव और पुद्गलों को गतिपूर्वक स्थिति करने में सहकारी–गुणसंयुक्त लोकप्रमाण एक द्रव्य है।

(४) आकाशद्रव्य : सर्व द्रव्यों को अवगाहनहेतुत्वलक्षणसंयुक्त लोकालोक–प्रमाण एक द्रव्य है। जिसमें सब द्रव्यें पाई जावें, उसे लोक और जहाँ केवल एक आकाश ही है, उसे अलोक कहते हैं। दोनों की सत्ता भिन्न नहीं है; अत: एक ही द्रव्य है।

(५) कालद्रव्य : सर्व द्रव्यों को वर्तनाहेतुत्वलक्षणसंयुक्त लोक के एक–एक प्रदेश पर स्थित एक–एक प्रदेशमात्र असंख्यात द्रव्य हैं। उनके परिणाम के निमित्त से समय, आवली आदि व्यवहारकाल है। इस प्रकार जीव सहित छह द्रव्य जानना। काल के बहु प्रदेश नहीं हैं, अत: काल के बिना शेष पाँच द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते हैं। इसमें जीवतत्त्व और पुद्गल–अजीवतत्त्व के परस्पर सम्बन्ध से अन्य पाँच तत्त्व होते हैं।

३. आस्रवतत्त्व : जीव के रागादि परिणामों से योग द्वारा आनेवाले पुद्गल के आगमन को आस्रवतत्त्व कहते हैं।

४. बन्धतत्त्व : जीव की अशुद्धता के निमित्त से आये हुए पुद्गलों का ज्ञानावरणादिरूप अपनी स्थिति और रससंयुक्त आत्मप्रदेशों के साथ सम्बन्धरूप होने को बन्धतत्त्व कहते हैं।

५. संवरतत्त्व : जीव के रागादि परिणाम के अभाव से पुद्गलों के न आने को संवरतत्त्व कहते हैं।

www.vitragvani.com

६. निर्जरातत्त्व : जीव के शुद्धोपयोग के बल से पूर्व में बँधे हुए कर्मों के एकदेश नाश होने को संवरपूर्वक निर्जरा कहते हैं। कर्म के फल को भोगने पर जो उनकी निर्जरा की जाती है, वह निर्जरा, मोक्ष के लिये कारणभूत नहीं है।

७. मोक्षतत्त्व : सर्वथा कर्म के नाश होने पर जीव के निजभाव प्रगट होने को मोक्षतत्त्व कहते हैं। यह सात तत्त्वार्थ जानना। पुण्य-पाप तत्त्व है, वह आस्रवतत्त्व के भेद हैं; इसलिए अलग नहीं कहे गए। इस प्रकार यह तत्त्वार्थ का श्रद्धान है, वही सम्यग्दर्शन का लक्षण कहा है।

प्रश्न : इस लक्षण में अव्याप्तिदोष आता है। किस प्रकार? जिस समय सम्यग्दृष्टि, विषय-कषाय की तीव्रतारूप परिणमन करता है, तब ऐसा श्रद्धान कैसे रह सकता है? लक्षण तो वह है जो लक्ष्य में सर्वथा सदाकाल पाया जावे।

उत्तर : जीव के दो भाव हैं। एक श्रद्धानरूप है, दूसरा परिणमनरूप है। श्रद्धानरूप तो सम्यक्त्व का लक्षण है और परिणामरूप, चारित्र का लक्षण है। सम्यग्दृष्टि, विषय-कषाय के परिणमनरूप हुआ है, श्रद्धान में प्रतीति यथावत् है। ''जिस प्रकार गुमाश्ता साहूकार का चाकर है। उसके अन्तरङ्ग में ऐसी प्रतीति है कि यह सभी कुछ सेठ का कार्य है, मेरा घर तो भिन्न ही है। परिणामों से तो सेठ के कार्य में प्रवर्तन करता है और उस सेठ के कार्य को 'मेरा-मेरा' भी कहता है, नफा-नुकसान होने पर हर्ष-शोक भी करता है और उस प्रतीति को बारबार सँभालता भी नहीं है। परन्तु जिस समय उस सेठ का और अपना हिसाब करता है, तब जैसी प्रतीति अन्तरङ्ग में थी वैसी प्रगट करता है। सेठ के कार्य में प्रवर्तन करते समय वह प्रतीति शक्तिरूप रहती है। कदाचित् वह सेठ के धन की चोरी करके उसे अपना जाने तो उसे अपराधी कहते हैं। फिर वह गुमाश्ता सेठ की नौकरी को पराधीन दुःखदायक मानता है परन्तु अपने स्वयं के धन के बल-बिना आजीविका के वशवर्त्ती होकर उसके काम में प्रवर्तन करता है।'' वैसे ही ज्ञानी कर्म के उदय को भोगता है।

इसके अन्तरङ्ग में ऐसी प्रतीति है कि यह सब दिखावा मात्र भेष है, मेरा स्वरूप तो उन सबसे भिन्न ही है, परिणामों के द्वारा औदयिकभावों में परिणमन करता है और उदय के सम्बन्ध के वश 'मेरा-मेरा' भी कहता है, इष्ट-अनिष्ट में हर्ष-विषाद भी करता है और अपनी उस प्रतीति को बारबार सँभालता भी नहीं है। परन्तु जिस समय

www.vitragvani.com

उस कर्म और अपने स्वरूप का विचार करता है, तब जैसी प्रतीति अन्तरङ्ग में थी, वैसी ही प्रगट करता है। फिर उस कर्म के उदय में वह प्रतीति शक्तिरूप रहती है, यदि कदाचित् कभी भी उस कर्म के उदय को श्रद्धान में अपना जाने तो उसे मिथ्यात्वी कहते हैं।

पुनः वह ज्ञानी, कर्म के उदय को पराधीन दुःख जानता है परन्तु अपने शुद्धोपयोग के बल–बिना पूर्वबद्ध कर्म के वश होकर कर्म के औदयिकभावों में प्रवर्तन करता है। इस प्रकार सम्यक्त्वी के तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन परिणमनरूप तो निर्बाधरूप से निरन्तर ही है परन्तु ज्ञानोपयोग अपेक्षा से देखा जावे तो सामान्यरूप अथवा विशेषरूप, शक्ति अवस्था में अथवा व्यक्त अवस्था में (–सम्यक्रूप परिणमन तो) सदाकाल होता ही है।

प्रश्न : भले ही इस लक्षण में अव्याप्ति दोष नहीं है परन्तु अतिव्याप्ति दोष तो लगता है। कारण कि द्रव्यलिंगी मुनि, जिनप्रणीत सात तत्त्वों को ही मानता है, अन्यमत के कल्पित तत्त्वों को नहीं मानता। लक्षण तो ऐसा होना चाहिये जो लक्ष्य के अलावा अन्य स्थान में न पाया जावे।

उत्तर : द्रव्यलिंगी मुनि, जिनप्रणीत तत्त्व को ही मानता है परन्तु विपरीताभिनिवेश से संयुक्त मानता है, शरीराश्रित क्रियाकाण्ड को अपनी जानता है, इससे अजीवतत्त्व में जीवतत्त्व का श्रद्धान करता है। पुनः आस्रव–बन्धरूप जो शील* संयमादिरूप परिणाम हैं, उन्हें संवर–निर्जरारूप मानकर मोक्ष का कारण मानता है। द्रव्यलिंगी पाप से तो विरक्त हुआ है परन्तु पुण्य में उपादेयबुद्धि से परिणमन करता है; इसलिये उसे तत्त्वार्थश्रद्धान नहीं है। इस भाँति (विपरीत अभिप्रायरहित) तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन अंगीकार करना चाहिये।।२२।।

गाथा २२ पर प्रवचन

इस प्रकार जो सम्यक्त्व का लक्षण जाने.... अब समकित का लक्षण क्या है, उसे जानना चाहिए? **तो उसे अंगीकार करे। इसलिए (प्रथम ही) उस सम्यक्त्व का**

* शील = शुभभावरूप व्यवहार ब्रह्मचर्यादि।

www.vitragvani.com

लक्षण कहते हैं। देखो! **आदौ** समकित। पहले में पहला समकित, जो मोक्ष का उपाय, मोक्ष का कारण—ऐसे समकित की यह व्याख्या है। यह निश्चय समकित की व्याख्या है—ऐसा कहते हैं। श्रावक के लिये यह है, देखो! तब वे कहते हैं—श्रावक को सराग समकित होता है; वीतराग समकित निश्चय नहीं होता है, निश्चय समकित ऊपर होता है। यहाँ रागसहित, शुभयोगसहित की श्रद्धा (होती है—ऐसा वे कहते हैं।)

यहाँ तो आचार्य यह बात करते हैं कि मोक्षमार्ग के तीन अवयव अर्थात् तीन समुदाय है। उसका पहला सम्यग्दर्शन, श्रावक के लिये व्याख्या चलती है और उस श्रावक को भी पहले सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है—पंचम गुणस्थान की व्याख्या चलती है।

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूपं तत्।।२२।।

देखो! यह श्लोक रखा है, भाई ने-टोडरमलजी ने, मोक्षमार्गप्रकाशक में निश्चय सिद्ध करने के लिये यह गाथा है। नौवें में या सातवें में? नौवें में। **'जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्' 'सदैव'** भिन्न किया, शामिल चाहिए। **'सदैव कर्त्तव्यम्'** सदा ही कर्तव्य है। व्यवहार सदा कर्तव्य नहीं है; यह तो निश्चय है, इसलिए सदा ही कर्तव्य है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सदा ही कर्तव्य अर्थात् 'उसरूप' सदा रहेगा। फिर ठेठ सिद्ध में भी (रहेगा)—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूपं तत्' देखो! अभी तो श्रावक को पहली सम्यग्दर्शन की दशा ऐसी होती है, उसका वर्णन करते हैं। अब वे (दूसरे लोग) कहते हैं कि चौथे, पाँचवें और छठवें (गुणस्थान) में व्यवहार समकित होता है, व्यवहार ज्ञान होता है, व्यवहार चारित्र होता है; निश्चय नहीं होता। यहाँ तो यह निश्चय की बात करते हैं। **जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का....** इसके बाद व्याख्या करेंगे, हों! सामान्य-विशेष। जीव, अजीवादि। क्योंकि थोड़ी बुद्धिवाले कितने ही तिर्यंच होते हैं, कितने ही मनुष्य होते हैं, देव होते हैं, नारकी होते हैं। उन्हें सामान्यरूप से भी यह जीवतत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन होता है, विशेष तत्त्व का ज्ञान न हो। चैतन्यस्वरूप कहेंगे। परभावों से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को अपनेरूप श्रद्धान करे, उसे सामान्य तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं।

www.vitragvani.com

भावार्थ में है। समझ में आया? विशेष जानपना न हो, विशेष पहलू न जानता हो, मूल पहलू संक्षेप में (जानता हो)। ज्ञायकस्वरूप आत्मा और इसके अतिरिक्त सब अजीव, बस! परभाव, वह पुण्य-पाप; स्वभाव, वह भिन्न—ऐसा सामान्यरूप से भी जानकर जो अन्तर सम्यग्दर्शन अंगीकार करता है, वह सामान्य समकित है। उसमें सात तत्त्व भी सामान्यरूप से आ जाते हैं, उतारे हैं।

आत्मा, यह आत्मा, वह आनन्दस्वरूप है—ऐसा भान हुआ, वह आत्मा। इसके अतिरिक्त, इस आनन्द के अतिरिक्त ये दूसरी बात है, वह इससे विरुद्ध है; दुःख अर्थात् आस्रव और बन्ध है। इस तत्त्व (जीव) में आनन्द है, इससे दूसरा जो तत्त्व, वह अजीव। सब साथ में आ गया। साधन हो, वह संवर-निर्जरा, पूर्ण साधन हो, वह मोक्ष। यह वस्तु आनन्द है, इसकी पूर्णता मोक्ष। यह साधन हो पर्याय प्रगटी, वह संवर-निर्जरा, यह आत्मा। इससे विरुद्ध वह अजीव; आनन्द से विरुद्ध वह आस्रव और बन्ध। समझ में आया? आस्रव और बन्ध, वह दुःखरूप। थोड़े में उसमें आ गया। उसमें भी ये सात तत्त्व तो डालने पड़ेंगे न? सामान्य में भी इन सात के बिना कोई उनका लक्षण दूसरा नहीं, वह लक्षण कोई दूसरा नहीं उनका। सामान्य-विशेष का अन्तर है, बाकी लक्षण दूसरा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का विपरीत अभिनिवेश (आग्रह) रहित अर्थात् अन्य को अन्यरूप समझने रूप जो मिथ्याज्ञान है उससे रहित.... लो! जिसका जो तत्त्व का भाव है—जीव का तत्त्वभाव, पुण्य का तत्त्वभाव, अजीव का तत्त्वभाव, पाप का तत्त्वभाव, संवर का स्वरूप, निर्जरा का स्वरूप तत्त्वभाव और मोक्ष का (स्वरूप)। ऐसा दूसरे को दूसरेरूप समझने के मिथ्याज्ञान से रहित होता है। **श्रद्धान अर्थात् दृढ़विश्वास 'सदैव' निरन्तर ही करना चाहिये।** लो! नियमसार (तीसरी गाथा में) आया न? **'णियमेण य जं कज्जं'** नियम से जो करनेयोग्य है, शब्द है कुन्दकुन्दाचार्य का। नियम से जो करनेयोग्य आत्मा का दर्शन, ज्ञान और स्थिरता / रमणता—तीन, ये नियम से करनेयोग्य निश्चय है। वह सदा ही करनेयोग्य है।

कारण कि वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है। लो! निर्विकल्प श्रद्धा हुई,

www.vitragvani.com

वह आत्मा की निर्विकारी पर्याय है, वह आत्मा का स्वरूप है कि जो सम्यग्दर्शन वह का वही ठेठ सिद्ध में रहता है; इसलिए सम्यग्दर्शन का पहले में पहला अखिल प्रयत्न करके-उपाय करके अन्तर्मुख होकर अंगीकार करना, यह पहला ही मोक्षमार्ग का अवयव है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)